अब्दुल बासित उर्फ राजू अैार अन्य वगैरा

बनाम

एम.डी.कादिर चौधरी अैार अन्य

(विशेष अनुमित याचिकाएं (सीआरएल) संख्या 6855-6857, 2013)

15 सितम्बर, 2014

[एच.एल.दत्तू अैार एस.ए.बोबडे, जे.जे.]

जमानतः

जमानत का रद्दकरण-उच्च न्यायालय द्वारा पहले दी गई जमानत को रद्द करना-अभिनिर्धारित किया कि किसी अनुचित अवैध व विकृत आदेश को अपास्त करने की अवधारणा अभियुक्त के दुराचरण, जमानत प्रदान करने के बाद उभरे नये विविध तथ्यों के आधार पर जमानत रद्द करने की अवधारण में अंतर हैं। अवैध या विधि के विपरीत होने के आधारों पर जमानत वरिष्ठ न्यायालय द्वारा ही रद्द की जा सकती है न कि उसी न्यायालय द्वारा जिसने जमानत दी है। इस मामले में जमानत रद्द करना इस आधार पर नहीं लाया गया कि अभियुक्त ने तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत कर, अदालत को गुमराह कर, धोखाधडी में शामिल होकर ली ऐसी कोई परिस्थितियां रिकॉर्ड पर नहीं थी जो यह दर्शाती हो कि अभियुक्त द्वारा

जमानत का दुरूपयोग किया गया था। इस लिए उच्च न्यायालय उक्त याचिका पर विचार नहीं कर सकता था और ना कानून में विकृत होने के आधार पर जमानत को रद्द कर सकता था। दण्ड प्रकिया संहिता 1973 धारा 167(2), 439(2), 352।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता

धारा 362-उच्च न्यायालय द्वारा पहले दी गई जमानत को रद्द करना अभिनिर्धारित किया, आरोपी याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत जमानत आवेदन में जमानत का आदेश अंततः विचाराधीन मुद्दे का निपटारा करता है और आवेदक को जमानत से राहत देता है लेकिन उच्च न्यायालय अधिकारहीन (Functus Officio) और धारा 362 याचिकाकर्ता मुल्जिमान को दी गई जमानत के आदेश को पुनर्विलोकित करने से अवरोधित करती है-यहां तक की अभियुक्त द्वारा जमानत प्राप्त करने के समय तथ्यों को छिपाने के आधार पर भी उच्च न्यायालय रेस्पोंडेंट द्वारा की गई इस आशय की प्रार्थना की निर्णय को पुनर्विलोकित किया जाए को स्वीकार नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अपास्त किया गया।

हरि सिंह मन्न बनाम हरभजन सिंह बाजवा 200 (4) सपल. एससीआर 313=(2001) 1एससीसी 169, बे बैरी अपार्टमेंट्स(पी) लि. और एएनआर. बनाम शोभा व अन्य 2006 (7) सपल. एससीआर 738=(2006) 13 एससीसी 737, यू.पी. राज्य ब्रासवेयर कोर्पोरेशन लि.

और एएनआर. बनाम उदय नारायण पान्डे (2006) 1 एससीसी 479, ओर रशमि रेखा थातोई और एएनआर. बनाम ओडिसा राज्य और अन्य, 2012(5) एससीआर 674=(2012) 5 एससीसी 690.

रघुबीर सिंह व अन्य वगैरा बनाम बिहार राज्य 1987 क्रिएलजे 157, गुरूचरण सिंह व अन्य बनाम सराकर (दिल्ली प्रशासन) 1978(2) एससीआर 358=(1978) 1एससीसी 118, पूरन बनाम रामबिलास अैार अन्य,(2001) 6 एससीसी 318,डॉ. नरेन्द्र के. अमीन बनाम गुजरात राज्य अैार अन्य, 2008(6) एससीआर 1149=(2008) 13 एससीसी 584, रणजीत सिंह बनाम एम.पी राज्य अैार अन्य 2013(12) स्केल 190, गियान सिंह बनाम पंजाब राज्य 2012 (8) एससीआर 753=(2012)10 एससीसी 303, केन्द्रीय जांच ब्यूरो बनाम विजय साइ रेडडी, (2013) 7 एससीसी 452

मामला कानून संदर्भ

1987 क्रिएलजे 157 पैरा 18

1978(2) एससीआर 358 पैरा 18

(2001)6 एससीसी 318 पैरा 21

2008(6) एससीआर 1149 पैरा 21

2013(12) एससीएएलई 190 पैरा 22

2000 (4) सपल. एससीआर 313 पैरा 26

2012 (8) एससीआर 753 पैरा 27

(2013) 7 एससीसी 452 पैरा 28

2006 (7) सपल. एससीआर 738 पैरा 29

(2006) 1 एससीसी 479 पैरा 29

2012 (5) एससीआर 674 पैरा 29

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः 2013 की एसएलपी (आराधिक) संख्या 6855-57.

निर्णय और आदेश दिनांक 16.07.2013 से सीआरएलएमसी संख्या 226/2013 में बीए संख्या 654/2013, सीआरएलएमसी संख्या 227/2013 में बीए संख्या 664/2013 और सीआरएलएमसी संख्या 228 में बीए संख्या 593/2013, गौहाटी उच्च न्यायालय, गुवाहाटी।

नितिन सांगरा, वी.डी.खन्ना, सत्यजीत साहा, सुभाष विश्वास याचिकाकर्ताओं के लिए।

वर्तिका एस. वालिया (कॉर्पोरेट लॉ गुरप के लिए), प्रतिवादियों की ओर से शंकर दिवेते।

आदेश

1. यह विशेष अनुमति याचिका गोहाटी उच्च न्यायालय द्वारा क्रिमिनल मिस्लेनीयस न. 226/13 इन बी ए, 256/13 (डी/ओ) दिनांक 16.07.2013 में दिए गए निर्णय एवं आदेश दिनांक 16.07.13 जिसमें उच्च न्यायालय ने अपने द्वारा दी गई जमानत को रद्द किया, से उत्पन्न हुई।

2. इस प्रकरण के संक्षिप्त तथ्यों के अनुसार शिकायतकर्ता तोहफेल अहमद द्वारा अपने पुत्र के अपहरण की सूचना पर केस न. 181/11 धारा 365 भादस के तहत पुलिस थाना बादलपुर, करीमगंज आसाम में दिनांक 22.11.12 को दर्ज हुआ और उससे सेशन प्रकरण 75/12 अंतर्गत धारा 365, 120बी 302 और 201 भादस तथा धारा 27 आयुध अधिनियम के अन्तर्गत। दो मुल्जिमान याचिकाकर्ता कमाल हुसैन और मोमिनुद्दीन के विरूद्ध दर्ज हुआ। तत्पश्चात एक अन्य केस 126/12 अंतर्गत धारा 365 120बी 302 201 भादस और धारा 25(1बी) (ए), 2 और (3) आयुध अधिनियम के तहत साक्षियों को इस सेशन ट्रायल के दौरान साक्षियों को हत्या करने की धमकी देने का याचिकाकर्ता मुल्जिमान के विरूद्ध दर्ज हुआ और समवर्ती सेशन प्रकरण 182/12 कमिट हुआ। मुल्जिमान याचिकाकर्ता न्यायिक अभिरक्षा में थे, सेशन प्रकरण 75/12 में दो मुल्जिमान

याचिकाकर्ताओं को दोषमुक्त किए जाने पर विचारण न्यायालय ने अब्दुल बासित मुल्जिम को दिनांक 24.01.13 को जमानत दी।

3. मृतक की पत्नी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट पिटीशन न. 4523/12 इस आशय की पेश की, कि पुलिस को केस न. 126/12 में उचित तरीके से अन्वेषण करने हेतु अन्वेषण एजेन्सियों को निर्देश दिए जाए। उच्च न्यायालय ने पाया कि सेशन प्रकरण 182/12 आरोप विरचना की स्टेज पर है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर विचारण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 29.01.13 द्वारा धारा 173 (8) सीआरपीसी के प्रावधानों के अन्तर्गत एक स्वतंत्र एजेन्सी द्वारा अनुसंधान की आवश्यकता मानी विशेषकर सीआईडी द्वारा।

4. विचारण न्यायालय ने सेशन प्रकरण 182/12 में सीआईडी को अग्रिम अनुसंधान हेतु निर्देशित किया और विचारण की प्रक्रिया को स्थगित कर दिया तथा मुल्जिमान याचिकाकर्ता द्वारा पेश की गई जमानत प्रार्थना पत्र को आदेश दिनांक 18.02.13 द्वारा अस्वीकार कर दिया।

5. विचारण न्यायालय के इस आदेश के खिलाफ मुल्जिमान याचिकाकर्ता इस सीमित प्रार्थना के साथ उच्च न्यायालय में पहुंचे की उन्हें जमानत दी जाए। उच्च न्यायालय ने यह मत दिया की यद्यपि सेशन जज द्वारा अग्रिम अनुसंधान के निर्देश दिए गए है पूर्व में पुलिस द्वारा पेश आरोप पत्र प्रभावहीन हो गया है और याचिकाकर्ता अपीलार्थी धारा 167(2)

परन्तुक ए (1) के तहत अनुतोष प्राप्त करने के अधिकारी थे। अपने आदेश दिनांक 12.3.13 अन्तर्गत जमानत प्रार्थना पत्र 593/13 तीन मुल्जिम याचिकाकर्ता जो हमारे सामने याचिकाकर्ता है को जमानत प्रदान की। उच्च न्यायालय के इस आदेश के आधार पर तीन अन्य सहअभियुक्तगण याचिकाकर्ता को भी आदेश दिनांक 20.3.13 अन्तर्गत जमानत याचिका 654/13 में जमानत पा गया। इसी तरह से जमानत याचिका 664/13 आदेश दिनांक 20.3.13 द्वारा अन्य तीन मुल्जिमान को भी जमानत पर छोडा गया।

6. इन तीनों आदेशों से व्यथित होकर प्रत्यर्थीगण ने एक क्रिमिनल विविध याचिका 226/13 और 654/13 के द्वारा जमानत रद्दकरण की याचिका इस आधार पर दायर की कि सेशन जज करीमगंज ने सेशन केस न. 182/12 में धारा 173(8) सीआरपीसी के तहत सीआईडी को अग्रिम अनुसंधान के लिए कहा जो किसी भी प्रकार से पुनः अनुसंधान और नए अनुसंधान की श्रेणी में नहीं आता इसलिए पुलिस द्वारा पूर्व में पेश किया गया आरोप पत्र प्रभावहीन नहीं हो जाता इसलिए प्रत्यर्थीगण धारा 167(2)(ए)(1) के तहत डीफाल्ट जमानत के अधिकारी नहीं हो जाते, इस आधार पर कि आरोप पत्र को 90 दिन के भीतर पेश नहीं किया गया नहीं होते है।

7. उच्च न्यायालय ने एक समान निर्णय और आदेश द्वारा दिनांक 16.7.13 द्वारा यह आधार स्वीकार किया और प्रत्यर्थीगण की प्रार्थना

स्वीकार कर सभी मुल्जिमान याचिकाकर्ताओं की जमानत रद्द कर दी। इस प्रकरण को तय करते समय उच्च न्यायाल ने आदेश के पैरा न. 4 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया-

"यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि जमानत देने का आदेश विधि विपरीत होने जमानत रद्द करने का एक वैध आधार है, यह धारा 362 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

8. उच्च न्यायालय के जमानत रद्दकरण के इस आदेश से व्यथित होकर मुल्जिमान याचिकाकर्ता इन याचिकाओं के माध्यम से हमारे सामने आए है।

9. याचिकाकर्ताओं द्वारा इस निर्णय व आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि, उच्च न्यायालय जमानत रद्दकरण के प्रार्थना पत्र को मिथ्या व्यपदेशन के आधार पर नहीं सुन सकता है। यह आधार मात्र अपील में उठाया जा सकता है इसके अलावा उच्च न्यायालय का जमानत रद्द करने का आदेश अपने ही पूर्व में दिए गए आदेश के पुनर्विलोकन की श्रेणी में आएगा और यह पुनर्विलोकन और इस प्रकार विवादित निर्णय और आदेश विकृत एवं अपास्त किए जाने योग्य है।

10. इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण ने उच्च न्यायालय के जमानत रद्दकरण के आदेश को सही ठहराया।

11. हमने पक्षकारों की तरफ से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्तागण को सुना और निर्णय एवं आदेश के साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों का परिशीलन किया।

12. हमारे समक्ष एक संक्षिप्त प्रश्न विचार के लिए और निर्णय के लिए यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग अंतर्गत धारा 439(2) सीआरपीसी इस प्रकरण में उचित है।

13. इस मुद्दे पर विचार करने हेतु हमें प्रासंगिक संहिता के प्रावधानों को विशलेषण करना होगा।

14. धारा 167(2) सीआरपीसी का परन्तुक 1 प्रावधान करता है कि अन्वेषण एजेन्सी द्वारा निर्धारित अवधि में अन्वेषण पूरा न किए जाने पर अभियुक्त को छोडा जा सकता है। यह धारा इस प्रकार है

‘‘धारा 167- जब चौबीस घण्टे के अन्दर अन्वेषण पूरा न किया जा सके तब प्रक्रिया- (1) जब कभी कोई व्यक्ति गिरफतार किया गया है और अभिरक्षा में निरूद्ध है और यह प्रतीत हो कि अन्वेषण धारा 57 द्वारा नियत चौबीस घण्टे की अवधि के अन्दर पूरा नहीं किया जा सकता और यह विश्वास करने के लिए आधार है कि अभियोग या इत्तिला दृढ़ आधार पर है तब पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी या यदि अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी उपनिरीक्षक से निम्नतर पंक्ति का नहीं है तो वह,

निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को इसमें इसके पश्चात् विहित डायरी की मामले से सम्बन्धित प्रविष्टियों की एक प्रतिलिपि भेजेगा और साथ ही अभियुक्त व्यक्ति को भी उस मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे, इतनी अवधि के लिये, जो कुल मिलाकर पन्द्रह दिन से अधिक न होगी, निरूद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिये सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरूद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिये आदेश दे सकता हैः

[1][(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध, पन्द्रह दिन की अवधि से आगे के लिए, उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिससे उसका समाधान हो जाता है, कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है, किन्तु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध-

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण ऐसे अपराध के सम्बन्ध में है जो मृत्यु,

आजीवन कारावास अथवा दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय हैं

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत अधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के सम्बन्ध में हैं, और यथास्थिति, नब्बे दिन, अथवा साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड दिया जायेगा, और यह समझा जायेगा कि इस उपधारा के अधीन जमानत पर छोडा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिये उस अध्याय के उपबन्धों के अधीन छोड़ा गया है।

15. संहिता की धारा 439(2) सेशन न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को जमानत रद्दकरण की शक्तियां देती है, यह इस प्रकार से है

धारा 439- जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की विशेष शक्तियां-

(i) ”’

(ii) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर छोड़ जा चुका है, गिरफ्तार करने का निर्देश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है।

16. चुंकि पक्षकारों द्वारा मुख्य रूप से धारा 362 के निर्वचन का प्रश्न उठाया गया इसलिए यह आवश्यक है कि इसे एक नजर देखा जाए। धारा 362 सी आरपीसी का शीर्षक यह है कि ''न्यायालय निर्णय में संशोधन नहीं कर सकता और यह प्रावधान न्यायालय को एक बार निर्णय सुनाये जाने के बाद उसमें संशोधन और पुनर्विलोकन करने से प्रतिषेधित करता है। यह इस प्रकार से है

धारा 362- न्यायालय का अपने निर्णय में परिवर्तन न करना- इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय कोई न्यायालय जब उसने किसी मामले को निपटाने के लिए अपने निर्णय या अन्तिम आदेश पर हस्ताक्षर कर दियं है तब लिपिकीय या गणितीय भूल को ठीक करने के सिवाय उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा या उसका पुनर्विलोकन नहीं करेगा।

17. यह मामूली बात है कि धारा 167(2) एक काल्पनिक कल्पना का निर्माण करती है कि किसी व्यक्ति की रिहाई संहिता के अध्याय XXXIII के तहत रिहाई के समान होती है। यद्यपि धारा 162(2) के परन्तुक 'ए' के अनुसार जमानत किए जाने का आदेश गुणावगुण पर नहीं होता बल्कि अभियोजन की चूक के आधार पर होता है। उस चूक के निराकरण के बाद वह आदेश शून्य हो सकता है। इसलिए अभियुक्त जमानत पर रहने के विशेष अधिकार की मांग नहीं कर सकता। यदि अन्वेषण यह प्रकट करता

है कि अभियुक्त ने गंभीर अपराध कारित किया है तथा आरोप पत्र पेश किया जाता है, धारा 167(2) परन्तुक 'ए' के तहत की गई जमानत को अभियोजन द्वारा दिए गए प्रार्थनापत्र पर रद्द किया जा सकता है। जांच से पता चलता है कि आरोपी ने गंभीर अपराध किया है अपराध और आरोप पत्र दायर किया जाता है, धारा 167(2) के तहत दी गई जमानत अभियोजन की प्रार्थना पर रद्द की जा सकती है।

18. अध्याय XXXIII के तहत, धारा 439(1) उच्च न्यायालय के साथ-साथ सत्र न्यायालय को भी अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने की शक्ति देती है। धारा 439(2) उच्च न्यायालय को किसी व्यक्ति को जो अध्याय XXXIII के तहत जमानत पर आजाद है, को गिरफतार करने व अभिरक्षा में भेजने के निर्देश देने की शक्ति देती है। अर्थात उस व्यक्ति को जो जमानत दी गई है उसे रद्द करने की शक्ति देती है। आम तौर पर जमानत को रद्द करने के आधार इस प्रकार है कि (i) आरोपी समान आपराधिक गतिविधि में शामिल होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, (ii) अनुसंधान के दौरान हस्तक्षेप करता है। (iii) सबूतों या गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास करता है, (iv) गवाहो को धमकाता है या इसी तरह की गतिविधियों में शामिल होता है जिससे सुचारू जांच में बाधा आती है, (v) उसके दूसरे देश में भागने की संभावना है, (vi)भूमिगत होकर या जांच एजेंसी के लिए अनुपलब्ध होकर खुद को दुर्लभ बनाने का प्रयास

करता है, (vii) खुद को अपने जमानतदार की पहुंच से परे रखने का प्रयास करता है आदि। ये आधार उदाहरणात्मक हैं, संपूर्ण नहीं हैं। जहां आरोप पत्र दाखिल करने से दोष ठीक होने के बाद साठ दिनों में जांच पूरी नहीं करने में अभियोजन पक्ष की चूक के लिए धारा 167(2) के प्रावधान के तहत जमानत दी गई है, अभियोजन पक्ष जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है। यह मानने का उचित आधार है कि आरोपी ने गैर-जमानती अपराध किया है और उसे गिरफतार करना है और हिरासत में भेजना आवश्यक है। हालांकि अंतिम उल्लिखित मामले में, वास्तवव में बहुत मजबूत आधार की उम्मीद की जा सकती है। (रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य, 1987 क्रिएलजे 157)

19. उच्च न्यायालय को इस शक्ति का दायरा इस न्यायालय द्वारा धारा 439(2) पर गुरचरण सिंह और अनय वी.राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1978) 1 एस.सी.सी. 118 पर विचार किया गया।

20. गुरचरण सिंह मामले (सुपरा) में इस न्यायालय ने संहिता के तहत जमानत रद्द करने के प्रावधान को संक्षेप में व्याख्या की है, आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 (संक्षेप में, ''पुरानी संहिता'') से विभेद को दूर किया है। जमानत देने और रद्द करने की अदालतों की शक्तियों के साथ साथ कानून की स्थिति को स्पष्ट किया है। इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन कियाः

"16. नई संहिता की धारा 439 में उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को जमानत के संबंध में विशेष शक्ति प्रदान करती है, पुरानी संहिता की धारा 498, सीआरपीसी के तहत भी यह स्थिति थी। कहने का मतलब है, भले ही कोई मजिस्ट्रेट ने मुल्जिम को जमानत देने से मना किया, उच्च न्यायालय व सेशन न्यायालय उचित मामलों में जमानत दे सकती है। नई संहिता की धारा 439(2) के तहत, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी भी व्यक्ति को जो जमानत पर रिहा किया जा चुका है उसे गिरफतार करने व अभिरक्षा में भेजने के निर्देश दे सकता है। पुरानी संहिता में धारा 498(2) को कुछ भिन्न भाषा में कहा गया कि जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा 1 के अंतर्गत किसी व्यक्ति को जिसकी जमानत स्वीकार की गई उसे गिरफतार करने और अभिरक्षा में भेज सकता है। दूसरे शब्दो में पूरानी संहिता की धारा 498(2) के अनुसार एक व्यक्ति जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी गई उसको उच्च न्यायालय द्वारा ही अभिरक्षा में प्रतिपेशित किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति को सत्र न्यायालय द्वारा जमानत दी गई है तो उसे सत्र न्यायालय द्वारा ही अभिरक्षा में प्रतिपेषित किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को पुनः अभिरक्षा में भेजने की प्रार्थना के विचारण पर यह पाबंदी का प्रावधान नयी संहिता में धारा 498(2) से लिया गया है। नयी संहिता की धारा 439(2) के तहत उच्च न्यायालय अध्याय 33 के अन्तर्गत सत्र न्यायालय के साथ साथ किसी भी न्यायालय द्वारा जमानत पर छोडे गये

को अभिरक्षा में भेज सकता है यदि वह उचित समझता हो तो। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सत्र न्यायालय उस जमानत को रद्द नहीं कर सकता जो कि उच्च न्यायालय द्वारा दी गई हो जब तक कि नई परिस्थितियां उच्च न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को जमानत देने के बाद, विचारण के दौरान उत्पन्न नहीं हुई हो। तथापि सत्र न्यायालय द्वारा मुल्जिम को जमानत दी जाती है, राज्य के पास दो विकल्प है, वह सत्र न्यायालय के समक्ष जा सकती है यदि कुछ ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गई जो राज्य को पहले पता नहीं थी। राज्य इसके समान ही उच्च न्यायालय जा सकती है धारा 439(2) के तहत अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजन के लिए। जब सेशन जज के जमानत देने के आदेश से राज्य व्यथित हो कर और ऐसी कोई नई परिस्थितियां पैदा नहीं हुई है जो पहले से नहीं थी, राज्य के लिए यह अनुपयोगी होगा की वह वापस सेशन जज के पास जाए और विधि में यही सही है कि वह उच्च न्यायालय, जमानत के रद्दकरण हेतु जाए।

21. इस संदर्भ में इस न्यायालय के निर्णय अंतर्गत पूरण बनाम रामविलास और अन्य 2001/06 एसएससी 318 पर भरोसा करना लाभदायक है। इस मामले में न्यायालय ने माना कि अनुचित, अवैध या विकृत जमानत के आदेश को इस आधार पर रद्द करने की अवधारणा से बिल्कुल भिन्न है कि आरोपी द्वारा दुर्व्यव्हार किया गया है या कुछ

पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों के कारण ऐसे रद्दीकरण की आवश्यकता है। डॉ नरेन्द्र के. अमीन बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2008)13 एससीसी 584 में इस न्यायालय की तीन जजों की बेंच ने उपरोक्त सिधांत को दोहराया और उपलब्ध राहत के संबंध में अपील व पुनर्विलोकन के बीच अंतर को आगे बढ़ाया है। इस मामले में, उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 439(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलकर्ता को दी गई जमनात रद्द कर दी थी। अपील में इस न्यायालय के समक्ष यह कहा गया कि उच्च न्यायालय ने जमानत को रद्द करने और जमानत देने के बीच अंतर को विशलेषित करने में गलती की है। बेंच ने पूरण वाले प्रकरण में दिए गए मत की पुष्टि करते हुए कहा कि जब अप्रासंगिक सामग्री जमानत देते समय विचार में लाई गई तो इस प्रकार का आदेश अपील न्यायालय द्वारा स्क्रूटनी का विषय होगा और धारा 362 के तहत पुनर्विलोकन की श्रेणी में नहीं आएगा। संक्षेप में इस न्यायालय की राय है कि अगर जमानत का आदेश अनुचित है तो वह मात्र उच्चतर न्यायालय द्वारा ही अपास्त किया जा सकता है उसी न्यायालय द्वारा पुनर्विलोकन करने के लिए कोई जगह नहीं है।

22. उपरोक्त सिद्धांत को उलटते हुए अपने नवीनतम निर्णय रंजीत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य ओर अन्य 2013(12) 190 में देखा गया है कि

"20 एक अनुचित, अवैध या विकृत आदेश को रद्द करने और जमानत के आदेश को इस आधार पर रद्द करने की अवधारणा के बीच भी अंतर है कि अभियुक्त ने स्वयं कदाचार किया है या कुछ पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों के कारण इसे रद्द किया जा सकता है। यदि जमानत देने का आदेश विकृत है या अप्रासंगिक सामग्री पर पारित किया गया है, तो इसे वरिष्ठ न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है।"

23. इसलिए, एक अनुचित, अवैध या विकृत आदेश को रद्द करने की अवधारणा आरोपी के कदाचार या जमानत देने के बाद की अवधारणा से अलग है, जिसके लिए इस तरह के रद्दीकरण की आवश्यकता होती है और, उपरोक्त निर्णयों का अवलोकन करने से हमारे सामने यह प्रस्तुत होगा कि जमानत देने वाले आदेश को केवल अवैध या कानून के विपरीत होने के आधार पर उस न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है जिसने जमानत दी थी, न कि उसी न्यायालय द्वारा।

24. वर्तमान मामले में उत्तरदाताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध याचिका दायर की थी, जिसमें इस आधार पर जमानत

रद्द करने की मांग की गई थी कि याचिकाकर्ताओं द्वारा तथ्यों की गलत बयानी, अदालत को गुमराह करके और धोखाधडी में शामिल होकर जमानत प्राप्त की गई थी। इस प्रकार, याचिका में जमानत देने की वैधता को चुनौती दी गई और जमानत आदेश को कानून में विकृत होने के आधार पर रद्द करने की मांग की गई। इस तरह के निर्धारण से अंततः जमानत रद्द हो जाएगी। रिकॉर्ड पर लाई गई परिस्थितियां ऐसी किसी भी स्थिति को प्रतिबिंबित नहीं करती है जहां याचिकाकर्ता-अभियुक्त द्वारा जमानत का दुरुपयोग किया गया हो। इसलिए, उच्च न्यायालय उक्त याचिका पर विचार नहीं कर सकता था और कानून में विकृत होने के आधार पर जमानत को रद्द कर सकता था।

25. यह कानून का एक स्वीकृत सिद्धांत है कि जब किसी मामले का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निपटारा कर दिया जाता है, तो न्यायालय प्रत्यक्ष वैधानिक प्रावधान के अभाव में कार्य करता है और मामले में राहत के लिए नई प्रार्थना पर तब तक विचार नहीं कर सकता जब तक कि अंतिम निपटान के पिछले आदेश को रद्द नहीं किया जाता या उस सीमा तक संशोधित नहीं किया जाता। यह भी स्थापित कानून है कि जमानत देने वाले निर्णय और आदेश की संहिता में किसी भी स्पष्ट प्रावधान की अनुपस्थिति में ऐसे निर्णय और आदेश पारित करने वाले न्यायालय द्वारा समीक्षा नहीं की जा सकती है। संहिता की धारा 362 न्यायालय द्वारा

निपटाए गए मामलों में किसी भी परिवर्तन या समीक्षा पर रोक लगाती है। उक्त वैधानिक रोक का एकमात्र अपवाद न्यायालय द्वारा लिपिकीय या अंकगणितीय त्रृटि का सुधार है।

26. हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा, (2001)1 एससीसी 169 में याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा निस्तारित रिट याचिका में एक आपराधिक विविध याचिका दायर की गई थी। उच्च न्यायालय ने न केवल उक्त याचिका पर विचार किया था बल्कि निर्देश भी जारी किए थे। अपील में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि मुख्य मामले के निपटान के बाद विविध याचिकाएं दायर करने और उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी विविध याचिकाओं में नए निर्देश जारी करने की प्रथा अनुचित है, किसी के लिए संदर्भित नहीं है। वैधानिक प्रावधान और वास्तव में अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग, क्योंकि संहिता के तहत उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्णय का रिव्यु नहीं हो सकता है। न्यायालय ने कहा कि-

"9 दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो उच्च न्यायालय को अपने अपीलीय या पुनरीक्षण या मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित अपने फैसले की समीक्षा करने के लिए अधिकृत करता हो। ऐसी शक्ति का प्रयोग धारा 482 की सहायता से या आड़ में नहीं किया जा सकता है।

10. संहिता की धारा 362 में कहा गया है कि कोई भी अदालत, जब किसी मामले का निपटारा करने के लिए अपने फैसले या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर चुकी हो, लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को सुधारने के अलावा उसमें बदलाव या समीक्षा नहीं करेगी। यह धारा कानून के एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार जब कोई मामला किसी अदालत द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया जाता है, तो विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में उक्त अदालत फंक्शस ओफिशियो बन जाती है और उसी राहत के लिए एक नई प्रार्थना पर विचार करने से वंचित हो जाती है, जब तक कि पूर्व अंतिम निपटाने के आदेश को सक्षम क्षेत्राधिकार वाली अदालत द्वारा कानून द्वारा निर्धारित तरीके से रद्द कर दिया जाता है। किसी मामले के निपटारे के आधिकारिक आदेश पर हस्ताक्षर होते ही अदालत अधिकारहीन (Functus Officio) बन जाती है। उस आदेश में सुधार नहीं किया जा सकता मात्र अंकीय त्रुटिया ठीक करने के अलावा। तालब हाजी हुसैन मामले पर प्रतिवादी की निर्भरता गलत है। उस मामले में भी यह बताया गया था कि धारा 561-ए (नई संहिता की धारा 482) के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयमपूर्वक, सावधानीपूर्वक और सावधानी के साथ किया जाना चाहि और केवल तभी किया जाना चाहिए जहां ऐसा अभ्यास विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित हो। यह विवादित नहीं है कि संहिता की धारा 482 के तहत दायर याचिका का अंततः उच्च न्यायालय द्वारा 7.1.1999 को निपटारा कर

दिया गया था। संहिता की नई धारा 362, जिसे विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट और इस उद्देश्य के लिए नियुक्त संयुक्त चयन समितियों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया था, ने समीक्षा की सीमा को न केवल निर्णय तक बल्कि फैसलों के अलावा अंतिम आदेशों तक भी बढ़ा दिया है।

11. उच्च न्यायालय के दिनांक 30.4.1999 और 21.7.1999 के आक्षेपित आदेश, जो किसी भी वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में नहीं है, स्पष्ट रूप से एक आपराधिक मामले में समीक्षा याचिका में पारित किए गए है, अधिकार क्षेत्र के बिना हैं और रद्द किए जाने योग्य है।''

27. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 एससीसी 303 में इस न्यायालय ने धारा 362 को धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों पर एक आवश्यक जांच के रूप में बढ़ा दिया है। इस न्यायालय ने राय दी है कि अंतर्निहित शक्ति न्यायालय धारा 362 में निहित बचत प्रावधान पर विचार नहीं करता है और इसलिए, उस शक्ति को लागू करने का प्रयास फायदाप्रद नहीं हो सकता है। इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया हैः

> ''5. संहिता की धारा 362 स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि कोई भी अदालत जब किसी मामले के निपटारे के

लिए अपने फैसले या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर देती है, तो संहिता द्वारा अन्यथा प्रदान किए गए किसी लिपिकीय या अंकगणीतीय त्रुटि को सुधारने के अलावा उसमें बदलाव या समीक्षा नहीं करेगी। धारा 482 उच्च न्यायालय को ऐसे आदेश देने में सक्षम बनाता है जो संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने या उसके दुरुपयोग को रोकने के लिए, और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो। हालांकि, अंतर्निहित शक्तियां उतनी ही सिद्धांत और पूर्वनिर्णयों द्वारा नियंत्रित होती है जितनी कि व्यक्त कानून शक्ति द्वारा। यदि कोई मामला कानून के स्पष्ट शब्दो द्वारा व्यक्त किया गया है, तो अदालत वैधानिक प्रावधानों को नजर-अंदाज नहीं कर सकती है न ही इसके बजाय अंतर्निहित क्षेत्राधिकार की आड़ में एक नया प्रावधान विकसित कर सकती है''

28. इस न्यायालय के केंद्रीय जांच ब्यूरों बनाम वी. विजय साई रेड्डी (2013) 7 एससीसी 452 में अपने निर्णय के पैराग्राफ 30 में चेतावनी दी है कि जमानत को रद्द करने में आवश्यक रूप से पहले से किए

गए निर्णय की समीक्षा शामिल है, कानून की अदालत द्वारा बहुत संयमित ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।

29. यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता, अप्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता। वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते समय एक न्यायालय कानून के चारों कोनों के भीतर कार्य करने के लिए बाध्य हे। शक्ति का वैधानिक प्रयोग न्यायालय में निहित न्यायिक समीक्षा की शक्ति से भिन्न आधारा पर हे। इस न्यायालय द्वारा बे बेरी अपार्टमेंट्स (पी) लिमिटेड और अन्य में इसे बरकरार रखा गया है। वी. शोभा एवं अन्य, (2006)13 एससीसी 737, यू.पी.स्टेट ब्रासवेयर कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम उदय नारायण पांडे,(2006)1 एससीसी 479 और रश्मी रेखा थाटोल और अन्य बनाम उडीसा राज्य और अन्य, (2012) 5 एससीसी 690 में भी यही मत अपनाया था। यह वरिष्ठ न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे वैधानिक प्रावधानों के आदेश का पालन करें और पूर्वनिर्णयों द्वारा निर्देशित हों और ऐसे निर्देश जारी करें जो कानून मंे स्वीकार्य हों।

30. वर्तमान मामले में, आरोपी-याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत जमानत आवेदन में जमानत का आदेश अंततः विचाराधीन मुद्दे का निपटारा करता है और आवेदकों को राहत देता है। चूंकि, संहिता के तहत जमानत देने के आदेश की समीक्षा के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान मौजूद नहीं है, इसलिए

उच्च न्यायालय फंक्शस ओफिशिया हो जाता है और संहिता की धारा 362 आरोपी याचिकाकर्ताओं को जमानत देने वाले न्यायालय के फैसले और आदेश की समीक्षा को रोकते हुए यहां लागू होती है। भले ही जमानत रद्द करना संहिता की धारा 439(2) के तहत न्यायालय की संतुष्टि और विवेक पर निर्भर करता है, लेकिन जमानत देने वाले न्यायालय में समीक्षा की शक्ति निहित नहीं है। जमानत देने के दौरान आरोपी याचिकाकर्ताओं द्वारा गलत बयानी के तथ्य के आलोक में भी, उच्च न्यायालय विविध याचिका पर विचार करके अपने फैसले की समीक्षा करके प्रतिवादी/सूचनाकर्ता की प्रार्थना पर विचार नहीं कर सकता था।

31. इसमें, उच्च न्यायालय ने कानून की अच्छी तरह से स्थापित स्थिति की गलत व्याख्या की है, विस्तारित क्षेत्राधिकार को अपने उपर ले लिया है और याचिकाकर्ताओं को दी गई जमानत को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 362 के उल्लघंन में एक आदेश पारित किया है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय द्वारा जमापनत देने के अपने पहले के आदेश की समीक्षा करना उचित नहीं है और इस प्रकार, विवादित निर्णय और आदेश को रद्द करने की आवश्यकता है।

32. उच्च न्यायालय द्वारा परित निर्णय एवं आदेश को निरस्त किया जाता है। इस न्यायालय द्वारा 02.09.2013 को आरोपी-याचिकाकर्ताओं को

जमानत देने का अंतरिम आदेश 2012 के सत्र मामले संख्या 182 के अनुरूप पुलिस के केस संख्या 126/2012 के निपटान तक जारी रहेगा।

33. विशेष अनुमति याचिकाओं का निपटारा उपरोक्त शर्तों के अनुसार किया जाता है।

(यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी डॉ सिम्पल शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।)